अध्याय चौंतीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"हे कृपासागर, जो भवभय से दौड़कर आप के चरणों में शरण लेता है, आप उसकी रक्षा करके उसे हमेशा आप के चरणों के पास स्थान देते हैं। हे दयालु सिद्धारूढ़जी, मुझे भी आप स्वरूप का ज्ञान कराईए।"

हे सिद्धारूढ़ भगवान, इस जगत के सभी जीवात्माएँ आप से शासित हैं। आप का सगुण रूप देखते ही सांसारिक वस्तुओं पर होने वाली ममता नष्ट हो जाती है। जब तक आप के चरणों की प्राप्ति नहीं होती तब तक यह संसार कष्टकारक लगता है, परंतु एकबार आप के चरणों का लाभ होने के पश्चात कौन इस संसार से डरेगा? एकबार अमृत प्राशन करने के पश्चात दरदराए हुए अनाज की लपसी पीने की कामना कौन करेगा? उसी प्रकार, आप के चरणों के पास आनंदसागर की अनुभूति मिलती हो, तो कौन सांसारिक सुख चाहेगा? संसार यह दुख का सागर ही है, उसमें जो पामर डभककर सुख भोगना चाहता है, वह व्यर्थ ही जीवन का भार ढो रहा है, ऐसा कहना पड़ेगा। सभी शास्त्र तथा पुराणों में कहा गया है तथा सभी जीवात्माएँ अनुभव से जानते हैं, की संसार दुखदायी है; परंतु संसार में रहकर भी जिसे दुख की अनुभूति नहीं होती वह ज्ञानी मनुष्य के सिवाय अन्य कोई हो ही नहीं सकता। हालाँकि, ज्ञानी मनुष्य को संसार तथा जगत का फैलाव दिखाई पड़ता रहता है, फिर भी वह उसे सत्यता नहीं देता। जिस प्रकार अभिनेता भेस बदलकर नाटक में अभिनय करता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य इस संसार में रहता है। उसकी बुद्धि में क्रोध, व्देष आदि नहीं रहते, वह सारे जगत को एक चलचित्र के समान देखता है; उसके मन में पुरुषार्थ भाव (यानी 'मैं कर्ता हूँ' यह भावना) नहीं रहता और उसके मन से मोह पूर्ण रूप से नष्ट हुआ रहता है। मोह ही सभी दुखों की जड़ है, जिससे सुखी घर गृहस्थी बिगड़ जाती है; जीवात्मा पर पड़ा मोहपटल आत्मज्ञान के बिना पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता। ऐसा आत्मज्ञान सतगुरुजी के पास होता है, जिसे जो चाहिए, सतगुरुजी से वह उसे ले जाए। दीन होकर सतगुरुजी की शरण में जाने वाले भक्तों को वे वह ज्ञान देते हैं। जिस प्रकार अंबर में स्थित मेघ चातक पंछी पर वर्षा करते हैं, उसी प्रकार दयाघन सिद्धजी हुबली में रहकर, जो भक्त

उनसे ज्ञान माँगते हैं, उन्हें वह दे देते हैं। अब सिद्धजी की जीवनी सुनिए। सिद्धारूढ़जी के अनंत गुण सुनकर मन निष्काम होता है और जीवात्मा को ज्ञान प्राप्ति होती है।

कोकण (महाराष्ट्र राज्य का पश्चिमी किनारा) में ब्राह्मण कुल का एक जोड़ा रहता था; पत्नी को भूत की बाधा हुई थी परंतु, मंत्र, दवाईयाँ आदि विविध उपायों के बावजूद भी उसका संकट दूर नहीं हुआ, इसलिए पति पत्नी नरसोबावाडी (नरसोबावाडी यह महाराष्ट्र में स्थित एक प्रख्यात तीर्थ है, जहाँ पंद्रहवे शताब्दी के संत श्री स्वामी नरसिंह सरस्वती यतिवर्य की निर्गुण पादुकाएँ स्थापित हैं; श्री यतिवर्यजी को श्री दत्तात्रय भगवान का अवतार माना जाता है) गए। वहाँ जाने के पश्चात उन्होंने मनौती उतारी की पत्नी को लगा हुआ भूत उतर जाने पर वे सौ रुपये भगवान के चरणों में अर्पण करेंगे। उसपर उन्होंने वहाँ रहकर कुछ दिन भगवान की सेवा की। एक रात पत्नी के सपने में श्री नरसिंह सरस्वती यतिवर्यजी ने आकर उसे तत्काल हुबली में स्थित सिद्धारूढ़जी के पास जाने की आज्ञा की। यतिवर्यजी ने कहा, "मैं स्वयं वहाँ शरीर धारण करके रहता हूँ। अगर तुम सिद्धारूढ़जी के रूप में मेरी सेवा करोगी, तो उसी रूप में संतुष्ट होकर मैं तुम पर निश्चित ही कृपा करुँगा।" यह सुनते ही पत्नी की नींद खुल गयी। उसने तत्काल पति को जगाकर उसे सपने का विवरण सुनाकर हुबली चलने का अनुरोध किया। उसके पश्चात वे दोनों यतिवर्यजी को प्रणाम करके निकल पड़े और हुबली आकर सिद्धारूढ़जी से प्रेम से मिले। तब सतगुरुजी ने कहा, "आप दोनों यहीं रहकर प्रतिदिन भजन कीजिए। उससे सारी पीड़ा नष्ट होकर आप की तसल्ली होगी।" सतगुरुजी की आज्ञानुसार वह दंपति प्रतिदिन भजन का आनंद लेते थे तथा अन्य सेवा भी करते थे, उससे उनके मन को तसल्ली होती थी। कुछ दिनों के पश्चात, उस महात्मा की पावन संगति मिलने के कारण उनकी सारी चिंताएँ तथा पीड़ा नष्ट हो गए। उनका प्रवचन सुनकर उस दंपति की देहबुद्धि नष्ट होकर चित्त शुद्धि हो गयी। उस महिला का भूत उतर गया, जिससे वे दोनों अत्यंत हर्षित हुए; दोनों ने सिद्धजी को प्रणाम किया और कहा, "हे दयालु सिद्धनाथजी, आप की कृपा से सारे दुख, कष्ट दूर हो गये, परंतु आप के चरणों पर मन लग जाने के कारण, घर लौटने को बिलकुल जी

नहीं करता।" सतगुरुजी ने कहा, "आप अपने गाँव लौटकर सतगुरुचरणों की अविरत प्रेम पूर्वक भक्ति कीजिए।" सतगुरुनाथजी की बात सुनकर उस जोड़े ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर अपने गाँव लौटने निकल पड़े। अपने गाँव लौटने के पश्चात, सौ रुपये नरसिंह सरस्वती यतिवर्यजी को अर्पण करने की उतारी हुई मनौती याद करके दोनों को चिंता होने लगी। परंतु सतगुरु श्रीसिद्धारूढ़जी के कारण पत्नी तंदुरुस्त हो जाने के कारण, अब किसे पैसे अर्पण करने चाहिए, इस सोच में वे दोनों पड़ गये। उस रात पत्नी के सपने में श्री नरसिंह सरस्वती यतिवर्यजी प्रकट होकर बोले की पैसे सिद्धारूढ़जी को ही अर्पण करने चाहिए, क्योंकि वे एक महात्मा हैं, और इतना कहकर यतिवर्यजी अंतर्धान हुए। पत्नी ने पति से कहा की स्वयं यतिवर्यजी ने सपने में प्रकट होकर सिद्धारूढ़जी को पैसे देने की आज्ञा की है। भगवान की आज्ञा शिरोधार्य मानकर वे दोनों फिर हुबली पहुँचे, पति ने सिद्धारूढ़जी से प्रार्थना करके कहा, "हे प्रभु, पत्नी का भूत उतरकर वह तंदुरुस्त हो जाए इसलिए हमने श्री नरसिंह यतिवर्यजी को सौ रुपये अर्पण करने की मनौती उतारी थी। परंतु आप की कृपा से भूत उतर जाने के कारण, वे पैसे किसे अर्पण करने चाहिए, इस बात की चिंता हमें सता रही थी। इतने में स्वयं यतिवर्यजी ने सपने में प्रकट होकर वे पैसे आप ही को अर्पण करने की आज्ञा करने के कारण, हम पैसे आप को अर्पण करने हेतु यहाँ तक पधारे हैं।" ऐसा कहकर सतगुरुजी को पैसे अर्पण करके वे दोनों अपने गाँव लौटे। हालाँकि, वह दंपति सतगुरुजी की सकाम (फलप्राप्ति से किया गया कार्य) भक्ति कर रहे थे, फिर भी उनकी सतगुरुचरणों पर भक्ति स्थिर होने के कारण तथा निरंतर वे सतगुरुजी का भजन करते रहने के कारण, वे धन्य हैं ऐसा ही कहना चाहिए। केवल सतगुरुजी के सन्निधान में रहकर ही सकाम मन निष्काम होता है, उसके पश्चात उनकी कृपा होकर स्वरूप का ज्ञान होता है।

निरुपादप्पा नाम का एक भक्त हुबली शहर में रहता था; वह अपने बड़े भाई के घर ही खाना पीना करता था, परंतु उपजीविका के लिए कुछ भी कामधंदा नहीं करता था। उसकी सतगुरु सिद्धारूढ़जी पर दृढ़ श्रद्धा होने के कारण वह प्रतिदिन उनके दर्शन करने हेतु मठ आता था और कामधाम छोड़कर वही

रहता था; इसीलिए सभी उसे सताते थे। एकबार सतगुरुजी ने उसे कहा, "कामधाम छोड़कर मठ मत आया करो।" उनकी आज्ञा शिरोधार्य मानकर उसने उपजीविका के लिए कामधाम करना आरंभ किया। एकबार उसने अपने बड़े भाई से कहा की वह प्रतिदिन सिद्धनाथजी के लिए घर से नैवेद्य (भोजन) ले जाएगा, उसकी बात सुनकर उसके भाई ने उसे गालियाँ देकर गुस्से से तमतमाकर कहा की वह घर का सत्यानाश कर रहा है। निरुपादप्पा ने मन ही मन सोचा की प्रतिदिन उसके भोजन का आधा हिस्सा लेकर, सिद्धारूढ़जी को प्रेम पूर्वक अर्पण करके उन्हें तृप्त करना चाहिए। इस प्रकार मन ही मन निश्चय करने के पश्चात, प्रतिदिन भोजन के समय वह उसकी थाली में परोसे हुए भोजन में से आधा हिस्सा गुप्त रूप से निकालकर छुपाकर रखने लगा। स्वयं भोजन करने के पश्चात, छुपाकर रखा हुआ भोजन लेकर वह तेजी से मठ जाकर सतगुरुजी को प्रेम पूर्वक भोजन अर्पण करता था। उसके भोजन में से केवल चार निवाले खाकर भी दयालु सिद्धनाथजी आनंदित होते थे और निरुपादप्पा की भक्ति देखकर अन्य लोग आश्चर्य से दंग होते थे। एकबार सतगुरुजी निरुपादप्पा के बड़े भाई से मिलने के पश्चात बोले, "तुम प्रतिदिन भोजन मठ में क्यों पहुँचाते हो? वही भोजन तुम अपने घर में स्थित ईश्वर की मूर्ति के सामने रखा करो।" उसने कहा, "मैं कभी भी मठ में नहीं भोजन भेजता।" सिद्धारूढ़जी ने कहा, "तुम्हारा छोटा भाई तो प्रतिदिन भोजन लेकर मठ आता रहता है।" उसके पश्चात बिगड़े हुए बड़े भाई ने घर लौटकर निरुपादप्पा से कहा, "अगर कल से तुम सतगुरुजी के लिए भोजन ले जाओगे तो मैं तुम्हे उनकी कसम दे दूँगा|" निरुपादप्पा अत्यंत भोला था, कपट क्या चीज़ होती है, वह जानता तक नहीं था। वह भोलेपन से बोला, "मैं मेरे भोजन में से आधा हिस्सा निकालकर वही मठ ले जाता हूँ।" उसपर उसके भाई ने कहा, "परंतु तुम दूसरों से कुछ ज्यादा ही खा लेते हो।" ये सुनकर निरुपादप्पा के मन को बहुत कष्ट हुआ और उसे चिंता भी होने लगी। दूसरे दिन दोपहर के समय आकर बड़े भाई ने देखा तो निरुपादप्पा परोसी हुई थाली सामने रखकर स्तब्ध बैठा हुआ था। बड़े भाई को देखते ही निरुपादप्पा ने कहा, "सिद्धनाथजी को अब यहीं नैवेद्य अर्पण करता हूँ।" ऐसा कहकर वह भोजन की थाली लेकर अकेला ही अपने कक्ष में गया और

बार बार सतगुरुजी का नाम लेकर दुहाई देने लगा। "हे सिद्धनाथजी, गुरुदेव, आप के सिवाय मैं किस को अपना सखा समझूँ? कृपा करके जल्दी आईए। प्रतिदिन मैं आप को भोजन अर्पण करता था, परंतु बड़े भाई ने कसम देकर आप को भोजन अर्पण करने के लिए मना किया; इसलिए आप ही यहाँ आकर भोजन कीजिए| अगर आप न आएँ तो मैं भी भोजन नहीं करुँगा; महाराज, जल्दी आईए, अन्यथा मैं अपने प्राण दे दूँगा।" उसपर उसने नैवेद्य रखकर कुछ समय प्रतीक्षा की, परंतु उनका आगमन न हुआ देखकर उसने ऊपर के शहतीर को एक रस्सा बाँधा और उससे एक फँदा बनाकर अपने गले में डाल दिया। अपने गले पर फँदा अच्छी तरह से कसा जाए इसलिए वह ऊँचाई से कूदने के लिए तैयार हो गया; उस समय उसने मन ही मन कहा की हे सिद्धारूढ़जी, लगता है की आज किसी ने भी भोजन अर्पण न करने के कारण आप भूखे ही रहने वाले हैं, इसलिए तुरंत यहाँ आकर यह भोजन स्वीकार कीजिए, अन्यथा मैं अभी आप के चरणों में अपने प्राण दे दूँगा। ऐसा कहकर उसने ऊँचाई से नीचे छलांग लगा दी। उसी क्षण सतगुरुजी वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने उसे ऊपर ही ऊपर हलके से लोककर उठा लिया, उसपर उसके गले का फँदा निकालकर उसे जमीन पर उतारा। निरुपादप्पा गद्‌गद्‌ होकर बोला, "हे सतगुरुनाथ सखा, आप बिलकुल समय पर पहुँचे हैं, कृपा करके यह भोजन स्वीकार कीजिए|" ऐसा कहकर उसने तुरंत सिद्धारूढ़जी के सामने भोजन की थाली रख दी और स्वयं वह सिद्धनाथजी मुख में निवाले डालने लगा; उस समय उसे जो हर्ष हुआ वह त्रिभुवन में भी नहीं समाया जा सकता। उसके पश्चात निरुपादप्पा को खाना खिलाकर सिद्धारूढ़जी बाहर निकले और एक क्षण में अंतर्धान हो गए; किसी ने भी उन्हें नहीं देखा। इस प्रकार प्रतिदिन निरुपादप्पा एकांत में भोजन करता था तथा सतगुरु महाराज उसका भोजन स्वीकार करने चले आते थे।

एकबार उसका बड़ा भाई, निरुपादप्पा एकांत में क्या करता है यह जानने के लिए छुपकर सब कुछ देखने लगा। उसने सतगुरुजी प्रकट होते देखा और निरुपादप्पा के हाथ से उन्हें निवाला स्वीकार करते हुए देखकर वह हक्काबक्का रह गया। उस दृश्य देखकर वह भागकर आया और सतगुरुजी के चरण कसकर पकड़कर उसने कहा, "मेरी रक्षा कीजिए, स्वामीजी। मैं सचमुच ही अत्यंत मूरख

तथा जड़बुद्धि का मनुष्य हूँ; गुरुनाथजी, मैं आप की अगाध महिमा नहीं जानता था। धन्य है यह निरुपादप्पा, जिसकी संगति में रहकर मैं भी अपने आप को धन्य समझता हूँ। यह आप की अनन्य भाव से भक्ति करता है इसलिए आप इसे अपने साथ मठ ले जाईए, मैं आप दोनों के लिए प्रतिदिन भोजन लेकर मठ आया करुँगा। अब मैं इसे कोई कामधाम करने नहीं कहूँगा, इसकी बंधुता से मैं अपने आप को धन्य समझूँगा। आप ने यहाँ आकर कृपा की और हमारा घर पावन किया।" तब सतगुरुजी ने कहा, "मेरे बिना इसका मन नहीं लगता इसलिए, इसे मैं मेरे साथ सिद्धाश्रम ले जाता हूँ, वहाँ इसे मेरी सेवा करते हुए रहने दो।" उनके ये अमृत के समान मधुर शब्द सुनकर निरुपादप्पा के हर्ष का कोई ठिकाना न रहा; उसने कहा, "आज के पवित्र दिन मेरा पुण्य फलित हुआ और मैंने पुण्यदायक स्थान प्राप्त किया| आज से सिद्धारूढ़जी के पास रहकर मैं उनकी नियमित रूप से सेवा करुँगा।" ऐसा कहते समय उसके आँखों से झरझर प्रेमाश्रु बहने लगे और गद्‌गद्‌ होने के कारण उसका गला रूँध गया। इस प्रकार कुछ दिन सेवा करने के पश्चात एक दिन उसकी अचानक मृत्यु हो गयी; उस समय उसने कहा, "मैं सतगुरुनाथजी की कृपा से कैलास जाऊँगा," और सतगुरुजी का मन में स्मरण करते करते उन्ही के चरणों में सिर रखकर उसने प्राण छोड़ दिये; उस समय उस जगह बिजली की चमक के समान पल भर के लिए एक दिव्य प्रभा की जगमगाहट फैल गयी।

निरुपादप्पा की मृत्यु के पश्चात भक्तगण कह रहे थे की सचमुच ही निरुपादप्पा धन्य है, जिसने सिद्धारूढ़जी के रूप में साक्षात कैलासपति उमारमण को प्राप्त किया, जो स्वयं भक्तों के लिए अवतरित हुआ है। अब इस कथा का लक्ष्यार्थ सुनिए। जीवात्मा तथा बुद्धि इन्हें एक दंपति समझें। विषयोपभोग चिंतन का भूत उस बुद्धि रूपी महिला को सता रहा था। इसलिए वह जोड़ा श्री नरसिंह सरस्वती यतिवर्यजी का स्थान, नरसोबावाडी गया और वहाँ जाकर सेवा करने लगा। वहाँ स्वयं नरसिंह सरस्वती यतिवर्यजी ने सपने में आकर कहा की वे सिद्धारूढ़जी के रूप में हुबली में स्थित है, तथा उनकी कृपा प्राप्त करने से भूत उतर जाएगा। वहाँ जाकर अनन्य भाव से सतगुरुजी की सेवा करने के पश्चात विषयोपभोग चिंतन (सांसारिक सुखों के बारे में विचार करने वाला मन) का

विनाश हो गया; उसपर उन्होंने उनकी वृत्तियाँ रूपी पैसे सतगुरुनाथजी को अर्पण किये। अब दूसरी कथा का लक्ष्यार्थ सुनिए। जीवात्मा को निरुपादप्पा समझें। वह प्रतिदिन मठ रूपी समाधि में रहता था। परंतु प्रारब्ध रूपी बड़े भाई ने उसे वहाँ से निकालवाया। विषयोपभोग का रूप होने वाली वृत्तियाँ रूपी कामधाम करते करते आत्मरूप हुई वृत्तियों का नैवेद्य वह सतगुरुजी के चरणों में अर्पण करना चाहता था, परंतु उसके भाई के रूप में होने वाला प्रारब्ध उसे विरोध करने लगा। उस विरोध को न सह पाने के कारण सतगुरुजी के लिए जीवात्मा प्राण देने की कोशिश करते समय उसे जीवन्मुक्त कैवल्य स्थिति प्राप्त हो गयी, उसी पल प्रारब्ध का विरोध भी नाकाम हो गया। उसी क्षण ज्ञान रूपी सतगुरुजी ने आकर उसे तसल्ली दी; उसपर प्रारब्ध ने भी उसे छोड़ दिया और सतगुरुजी उसे ले गये। सतगुरुजी ने जीवात्मा को समाधि स्थिति तक पहुँचाया, इस प्रकार का इस कहानी का लक्ष्यार्थ श्रोतागण ,आप अपने मन पर अंकित कीजिए। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह चौंतीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥